गड़रिया

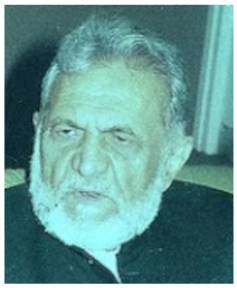

अशफाक अहमद

गड़रिया

सर्दी की एक अँधेरी रात की बात है मैं अपने गर्म बिस्तर पर सर ढके गहरी नींद सो रहा था कि किसी ने जोर से झंझोड़कर जगा दिया।

"कौन है?" मैंने चीखकर पूछा और उत्तर में एक बड़ा-सा हाथ मेरे सर से टकराया और घोर अंधेरे से आवांज आयी"थानेवालों ने रानो को गिरंफ्तार कर लिया।"

"क्या?" मैंने कांपते हाथ को परे ढकेलना चाहा, "क्या है?" और अंधेरे का भूत बोला"थानेवालों ने रानो को पकड़ लिया इसका फारसी में अनुवाद करो।"

"दाऊजी के बच्चे", मैंने रूखे होकर कहा, "आधी-आधी रात तंग करते हैं...दूर हो जाओ...मैं आपके घर नहीं रहता...मैं नहीं पढ़ता...दाऊजी के बच्चे कुत्ते..." और मैं रोने लगा।

दाऊजी ने पुचकार कर कहा"अगर पढ़ेगा नहीं, तो पास कैसे होगा? पास नहीं होगा, तो बड़ा आदमी न बन सकेगा! फिर लोग तेरे दाऊजी को कैसे जानेंगे?"

"भगवान करे सब मर जाएं, आप भी, आपको जाननेवाले भी...और मैं भी...मैं भी"...मैं अपनी जवान मौत पर ऐसा रोया कि दो क्षण के लिए घिग्गी बंध गयी।

दाऊजी बड़े प्यार से मेरे सर पर हाथ फेरे जाते थे और कह रहे थे"बस, अब चुपकर, शाबाश...मेरा अच्छा बेटा, इस समय यह अनुवाद कर दे, फिर नहीं जगाऊंगा।"

आंसुओं का तार टूटता जा रहा था। मैंने जलकर कहा"आज हरामजादे रानो को पकड़कर ले गये, कल किसी और को पकड़कर ले गये, कल किसी और को पकड़ लेंगे, आपका अनुवाद तो..."

"नहीं...नहीं"...उन्होंने बात काटकर कहा, "मेरा-तेरा वादा रहा। आज के बाद रात को जगाकर कुछ न पूछूँगा। शाबाश, अब बता थाने वालों ने रानो को गिरंफ्तार कर लिया।"

मैंने रूठकर कहा"मुझे नहीं आता।"

"तुरन्त 'नहीं' कह देता है।" उन्होंने सर से हाथ उठाकर कहा, "प्रयत्न तो कर।"

"नहीं करता", मैंने जलकर उत्तर दिया।

इसपर वह जरा हंसे और बोले"कारकुनाने गजमाखाना रानुरा तौकीफ करदंद।"

"कारकुनाने गजमाखाने थाने वालों भूलना नहीं, नया शब्द है, नई विधि है, दस बार कहो।"

मुझे पता था कि यह बला टलने वाली नहीं। मजबूरन गजमाखाना का पहाड़ा शुरू कर दिया।

जब दस बार कह चुका, तो दाऊजी ने बड़े लजीले ढंग से कहा"अब सारा वाक्य पाँच बार कहो।" जब पाँच बार की मुसीबत भी समाप्त हुई, तो उन्होंने आराम से बिस्तर में लिटाते हुए और रजाई उढ़ाते हुए कहा"भूलना नहीं, सुबह उठते ही पूछूंगा।"

शाम को जब मैं मुल्लाजी से सिपारे (कुरान के भाग) का पाठ लेकर लौटता तो खरासियों (गधेवालों) की गली से होकर अपने घर जाए करता, इस गली में तरह-तरह के लोग बसते थे। मगर मैं केवल माशकी से परिचित था। माशकी के घर के साथ बकरियों का एक बाड़ा था, जिसके तीन तरफ कच्चे मकानों की दीवारें और सामने की ओर आड़ी-तिरछी लकड़ियों और काँटेदार झाड़ियों का ऊँचा-नीचा जंगल था। इसके बाद गली में जरा-जरा मोड़ आता, गली और जरा तंग हो जाती।

इसमें अकेले चलते हुए मुझे सदा यूँ लगता जैसे मैं बन्दूक की नली में चला जा रहा हूं और ज्यों ही मैं उसके दहाने से बाहर निकलूंगा जोर से 'ठांय' होगी और मैं मर जाऊँगा। मगर शाम के समय कोई-न कोई राही इस गली में जरूर मिल जाता और मेरी जान बच जाती। इन जाने-आने वालों में कभी-कभी एक संफेद मूंछोंवाला लम्बा-सा आदमी भी होता, जिसकी शंक्ल बारहा माह वाले मलखी (जोतदार) से मिलती थी। सर पर मलमल की बड़ी-सी पगड़ी, जरा-सी झुकी हुई कमर पर खाकी रंग का ढीला और लम्बा कोट, खद्दर का तंग पाजामा और पांव में बूट। अधिकतर इनके साथ मेरी ही आयु का एक लड़का भी होता, जिसने बिलकुल इसी तरह के कपड़े पहने होते और वह आदमी अपने कोट की जेबों में हाथ डाले धीरे-धीरे इससे बातें किया करता। जब वह मेरे बराबर आते, तो लड़का मेरी तरफ देखता और मैं उसकी तरफ, और फिर एक क्षण को बिना झिझक गर्दन को मोड़कर हम अपनी राह चले जाते।

एक दिन मैं और मेरा भाई 'ठट्टियों के जोहड़' से मछलियां पकड़ने का निष्फल प्रयत्न करने के बाद वापस आ रहे थे तो नहर के पुल पर यही आदमी अपनी पगड़ी गोद में डाले बैठा था और उसकी सफेद चुटिया मैली मुर्गी के पर की भांति उसके सर से चिपटी हुई थी। उसके पास से गुंजरते हुए मेरे भाई ने माथे पर हाथ रखकर जोर से कहा,दाऊजी सलाम। और दाऊजी ने सर हिला कर कहा"जीते रहो।"

यह जानकर कि मेरा भाई उससे परिचित है मैं अत्यन्त खुश हुआ। और थोड़ी देर बाद अपनी पतली आवांज में चिल्लाया,"दाऊजी सलाम।"

"जीते रहो, जीते रहो।" उन्होंने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा और मेरे भाई ने पटाख से एक थप्पड़ दिया"शेखींखोर, कुत्ते!" वह चीखा"मैंने सलाम कर दिया, तो तेरी क्या जरूरत थी। हर बात में अपनी टाँग फँसाता है, कमीना!"

इस्लामिया प्राइमरी स्कूल से चौथा पास करके मैं एम. बी. हाई स्कूल की पाँचवीं कक्षा में दांखिल हुआ तो दाऊजी का लड़का मेरे क्लास का साथी निकला। उसकी सहायता से मैं जान गया कि दाऊजी खत्री थे और कस्बे के मुंसफी में अंर्जी लिखने को काम करते थे। लड़के का नाम उमीचन्द था। वह अपनी कक्षा में तेंज था। उसकी पगड़ी कक्षा में सबसे बड़ी थी और मुंह बिल्ली की तरह छोटा। कुछ लड़के उसको 'म्याऊँ' कहते, मगर मैं दाऊजी के कारण उसके असली नाम से पुकारता था, इस कारण वह मित्र बनने का वादा कर लिया।

गर्मियों की छुट्टियों के शुरू होने में एक हंफ्ता रहा होगा जब मैं उमीचन्द के साथ पहली बार उसके घर गया। जब हम डयोढ़ी में दांखिल हुए तो उमीचन्द ने चिल्लाकर 'बेबे नमस्ते' कहा और मुझे सहन के बीचों-बीच छोड़कर स्वयं बैठक में घुस गया। बरामदे में बोरियां बिछाये बेबे मशीन चला रही थी और उसने उत्तर दिया और वैसे ही मशीन चलाती रही। लड़की बड़ी-सी कैंची से कपड़े काट रही थी। बेबे ने मुंह-ही-मुंह में उत्तर दिया और वैसे ही गर्दन मोड़कर कहा"बेबे, शायद डॉक्टर साहब का लड़का है। मशीन रुक गयी", "हां, हां", बेबे ने मुसकराकर कहा और हाथ के इशारे से मुझे अपनी तरफ बुलाया।

"क्या नाम है तुम्हारा?" बेबे ने प्रेमपूर्वक पूछा।

मैंने निगाहें नीचे झुकाये धीरे से अपना नाम बनाया।

"आफ़ताब से बहुत शक्ल मिलती है", लड़की ने कैंची रखते हुए कहा, "है ना बेबे? क्यों नहीं, भाई जो हुआ आफताब का!"

"आफ़ताब का भाई है दाऊजी", लड़की ने रुकते हुए कहा, "उमीचन्द के साथ आया है।"

अन्दर से दाऊजी आये। उन्होंने घुटनों तक अपना पाजामा चढ़ा रखा था औरर् कुत्ता उतरा हुआ था मगर सर पर पगड़ी ज्यों-की-क्यों बंधी हुई थी। पानी की एक हल्की-सी बाल्टी उठाये वह बरामदे में आ गये और मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखते हुए बोले"हां, बहुत शंक्ल मिलती है। मगर मेरा आफ़ताब बहुत दुबला है और यह गोल-मटोल-सा है। फिर बाल्टी फर्श पर रखकर मेरे सर पर हाथ फेरा और पास ही काठ का एक स्टूल घसीटकर बैठ गये। जमीन से पांव ऊपर उठाकर हलके-से उन्हें झाड़ा और फिर बाल्टी में डाल दिया। उन्होंने बाल्टी से पानी भर-भर कर टांगों पर डालते हुए पूछा"कौन-सा सिपारा पढ़ रहे हो?"

"चौथा", मैंने दृढ़तापूर्वक कहा।

"क्या नाम है तीसरे सिपारे का?" उन्होंने पूछा।

"जी पता नहीं।" मेरी आवांज फिर डूब गयी।

"तिलकर रसूल।" उन्होंने पानी से हाथ निकालकर कहा।

उमीचन्द अभी बैठक के अन्दर ही था और मैं झेंप की गहराइयों में डूबता जा रहा था, दाऊजी ने निगाहें मेरी तरफ फेरकर कहा'सूरा फातिहा' (कुरान का प्रारम्भिक अध्याय) सुनाओ।

"मुझे नहीं आता।"मैंने लज्जित होकर कहा।

उन्होंने चकित होकर मेरी ओर देखा और कहा-'अलहमदो लिल्लाह' (सूरा फातिहा का प्रारम्भिक वाक्य) भी नहीं जानते?

" 'अलहमदो लिल्लाह' तो जानता हूं", मैंने जल्दी से कहा और नंजरें झुका लीं।

वह जरा मुसकराये और अपने से कहने लगेएक ही बात है, एक ही बात है, फिर उन्होंने सिर के इशारे से कहा"सुनाओ।"

जब मैं सुनाने लगा तो उन्होंने अपना पाजामा घुटनों से नीचे कर लिया और पगड़ी का पल्लू चौड़ा करके कन्धों पर डाल लिया और जब मैंने 'वल्द दुआलीन' (सूरा फातिहा का अन्तिम वाक्य) कहा तो मेरे साथ उन्होंने भी 'आमीन' कहा। मुझे खयाल हुआ कि वह उठकर इसी समय मुझे इनाम देंगे, क्योंकि पहली बार मैंने अपने ताया को अलहमदो सुनायी थी, तो उन्होंने भी ऐसे ही आमीन किया था और साथ ही एक रुपया इनाम भी दिया था। पर दाऊजी उसी तरह रहे, बल्कि और भी पत्थर हो गये। इतने में उमीचन्द किताब पढक़र ले आया और जब मैं चलने लगा, तो मैंने स्वभाव के विरुध्द धीरे से कहा"दाऊजी सलाम", और उन्होंने वैसे ही डूबे-डूबे उत्तर दिया"जीते रहो।"

बेबे ने मशीन रोककर कहा"कभी-कभी उमीचन्द के साथ खेलने आ जाए कर।"

"हां, हां, आ जाए कर", दाऊजी बोले। "आफ़ताब भी आ जाए करता था।" फिर उन्होंने बाल्टी पर झुककर कहा, "हमारा आफ़ताब तो हमसे बहुत दूर हो गया और फारसी का शेर पढ़ने लगे। यह दाऊजी बड़े कंजूस हैं। बहुत अधिक चुप-से हैं और कुछ-बहरे-से।"

उसी दिन शाम को अपनी अम्मा को बताया कि मैं दाऊजी के घर गया था और वह आफ़ताब भाई की बहुत याद रहे थे। अम्मा ने झुंझला कर कहा"तू मुझसे पूछ तो लेता। यह ठीक है कि आफ़ताब उनसे पढ़ता रहा है, और उनकी बहुत इंज्जत करता है, मगर तेरे अब्बाजी उनसे बोलते नहीं। किसी बात पर झगड़ा हो गया था सो अभी तक नारांजगी चली आ रही है। अगर उन्हें पता चला कि तू उनके घर गया था तो वह नारांज होंगे।" फिर अम्मा ने नर्म होकर कहा"अपने अब्बा से इसका जिक्र न करना।"

घर में दाऊजी को अपनी बेटी से बड़ा प्यार था। हम सब उसे बीबी कहकर पुकारते थे। अकेले दाऊजी कुररत (ठंडक) कहकर पुकारते थे, कभी-कभी बैठे-बैठे हांक लगाकर कहते"कुररत बिटिया, यह तेरी कैंची कब छूटेगी?" और वह इसके उत्तर में मुसकरा कर चुप हो जाती। बेबे को इस नाम से चिढ़ थी। वह चीख कर झट उत्तर देतीं'तुमने इसका नाम कुररत रखकर इसके भाग्य में कुर्ते सीना लिखा दिया है।' मुसकराकर कहते, 'अनपढ़, अगर सूरत अच्छी न हो तो सलीका ही हो, आदमी बात तो मुंह से अच्छी निकाले। और दाऊजी को उनके मुंह में जो आता, कहती जाती। पहले कोसने, फिर बददुआएं, फिर अन्त में गलियों पर उतर आतीं। at xxnxxx.info

बीबी रोकती, तो दाऊजी कहते 'हवाएं चलने को होती हैं। तुम इन्हें रोको मत।' फिर वह अपनी पुस्तकें समेटते और अपना प्रिय हसीर उठाकर चुपके से सीढियां चढ़ जाते।

नवीं कक्षा के शुरू में मेरी एक बुरी आदत पड़ गयी इस आदत ने अजीब गुल खिलाये। हकीम अली अहमद मरहूम (स्वर्गीय) हमारे कस्बे के एक ही हकीम थे। इलाज से तो उन्हें खास वास्ता नहीं था परन्तु बातें बड़ी मंजेदार सुनाते थे आर औलियाओं (अवतारों) के किस्से, जिन्न-भूतों की कहानियां, हजरत सुलेमान (एक अवतार) और मलका सबा (अरब की रानी और सुलेमान की प्रेमिका) की घरेलू जिन्दगी की दास्तानें उनके निशाने पर लगने वाले टोटके थे। उनके तंग अंधेरे मतब (दवांखाना) में माजून के चन्द डिब्बे और शरबत की चन्द बोतलें और दो-तीन शीशियों के अतिरिक्त कुछ न था। दवाओं के अलावा वह अपनी तिलस्माती तंकरीर और हंजरत सुलेमान के मुख्य तावींजों से रोगी का इलाज करते थे।

मैं अपने अस्पताल से खाली शीशियां और बोतलें चुराकर लाता और उसके बदले में मुझे दास्तान अमीर हमंजा (कहानियों की एक किताब) की जिल्दें पढ़ने को दिया करते। ये पुस्तकें इतनी मनोरंजक थीं कि मैं रात-रात भर अपने बिस्तर में दुबककर पढ़ता और सुबह देर तक सोया रहता।

रात तिलिस्मे-होशरूबा (तिलिस्मी कहानियों की किताब) के महलों में गुंजरती और दिन क्लास में बेंच पर खड़े होकर। तिमाही में फेल होते-होते बचा। छमाही में बीमार

पड़ गया और सालाना में वैद्यजी की सहायता से मास्टरों से मिलकर पास हो गया। दसवीं में सन्दलीनामा (फारसी की एक किताब), फसाना आज़ाद (उर्दू की हास्य कथा), अलिफ लैला, साथ-साथ चलते थे। फसाना आज़ाद और सन्दलीनामा घर पर रखते थे। परन्तु अलिफ लैला स्कूल के डेक्स में बन्द रहती थी। अन्तिम बेंच पर भूगोल की किताब के नीचे मैं सिन्दबाद जहाजी के साथ-साथ चलता और इस तरह दुनिया की सैर करता।

22 मई का किस्सा है कि विश्वविद्यालय के परिणाम की किताब एम. बी. हाई स्कूल पहूंची। उमीचन्द न केवल स्कूल में वरन जिले भर में प्रथम आया था। सात लड़के फेल हो गये थे और बाइस पास। वैद्यजी का जादू विश्वविद्यालय पर नहीं चल सका और पंजाब के कठोर विश्वविद्यालय ने मेरा नाम भी उन सात लड़कों में सम्मिलित कर दिया। उसी शाम पिताजी ने मेरी पिटाई की और घर से बाहर निकाल दिया। मैं अस्पताल की रेहेट की गद्दी पर आ बैठा और रात भर यह सोचता रहा, अब क्या करना चाहिए और कहां जाना चाहिए?

अगले दिन मेरे फेल होने वाले साथियों में से खुशिया, कोडू और दिलसिव, याबीब, मस्जिद के पिछवाड़े टाल के पेड़ के पास बैठे मिल गये। वह लाहौर जाकर व्यापार करने का प्रोग्राम बना रहे थे।

दिलसिव, याबीब ने मुझे बताया कि लाहौर में बहुत व्यापार है क्योंकि उसके मामाजी अक्सर अपने मित्र फतेहचन्द के ठेकों का जिक्र करते थे, जिसने साल में ही दो कारें खरीद ली थीं।

मैंने उनके व्यापार के विषय में पूछा तो याबीब ने कहा कि लाहौर में हर प्रकार के व्यापार मिल जाते हैं। बस, एक दंफ्तर होना चाहिए और उसके सामने बड़ा-सा साइनबोर्ड देखकर लोग खुद व्यापार दे जाते हैं।

अत: यह निश्चित हुआ कि अगले दिन दो बजे वाली गाड़ी से हम रवाना हो जाएंगे। घर पहुंचकर मैं यात्रा की तैयारी करने लगा। बूट पॉलिश कर रहा था कि नौकर ने

आकर कहा"चलो जी, डाक्टर साहब बुलाते हैं।" मैं डरते-डरते दाऊजी को सलाम किया, उसके उत्तर में बहुत धीरे से 'जीते रहो' की दुआ सुनी।

"इनको पहचानते हो?" अब्बाजी ने कठोरता से कहा।

"बेशक", मैंने एक सभ्य की तरह कहा।

"बेशक के बच्चे, हरामंजादे मैं तेरी यह सब..."

"ना, ना, डाक्टर साहब, दाऊजी ने हाथ ऊपर उठाकर कहा, यह बड़ा अच्छा लड़का है, इसको तो..."

और डाक्टर साहब ने बात काटकर कठोरता से कहाआप नहीं जानते मुंशीजी, इस कमीने ने मेरी इंज्ज़त खाक में मिला दी।

"आप चिन्ता न करें, यह हमारे आंफताब से भी बुध्दिमान है, एक दिन...अबकी बार डॉक्टर साहब को गुस्सा आ गया। मेज पर हाथ मारकर बोले"कैसी बात करते हो मुंशीजी, यह आंफताब के जूते की बराबरी नहीं कर सकता।"

"कर लेगा, कर लेगा, डाक्टर साहब!" दाऊजी ने सर हिलाते हुए कहा, "आप निश्चिन्त रहें।" फिर वह अपनी कुर्सी से उठे और मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए बोले"मैं सैर को चलता हूं, तुम मेरे साथ आओ, बातें करेंगे।" अब्बाजी उसी तरह कुर्सी पर बैठे रजिस्टर उलटते रहे और गुस्से में बड़बड़ाते रहे। दाऊजी मुझे इधर-उधर घुमाते और पेड़ों के नाम फारसी में बताते हुए नहर के उसी पुल पर ले गये, जहां, मेरी उनसे पहली भेंट हुई थी।

अपनी खास जगह पर बैठकर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारकर गोद में रख ली। सर पर हाथ फेरा और मुझे सामने बैठने का इशारा किया। फिर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और कहा"आज से मैं तुम्हे पढ़ाऊंगा और क्लास में प्रथम श्रेणी जरूर दिला दूंगा। मेरे हर उद्देश्य में भगवान की सहायता होती है और उसने मुझे अपनी कृपा से निराश कभी नहीं किया।"

"मुझसे पढ़ाई नहीं होगी।" मैंने हठ करके बात काटी।

"पढ़ाई न होगी तो क्या होगा, गोलू!" उन्होंने मुस्कराकर कहा।

मैंने कहा"मैं व्यापार करूंगा। रुपये कमाऊंगा और अपनी कार लेकर आऊँगा। फिर देखना।..."

अबकी बार दाऊजी ने मेरी बात काटी और प्रेमपूर्वक कहा"भगवान एक छोड़ दस कारें तुझे दे। पर एक अनपढ़ की कार में मैं न बैठूंगा, न डॉक्टर साहब।" मैंने जलकर कहा"मुझे किसी की परवाह नहीं। डॉ. साहब अपने यहां राजी रहें, मैं अपने यहां खुश।"

उन्होंने मेरी बात न सुनी और कहने लगे अगर अपने उस्ताद के सामने मेरे मुंह से ऐसी बात निकल जाती? तो...तो...उन्होंने तुरन्त पगड़ी उठाकर सर पर रख ली और कहने लगे"मैं हुजूर के दरबार का तुच्छ कुत्ता। मैं हंजरत मौलाना की खाक से बुरा व्यक्ति होकर आका से यह कहकर लानत या धिक्कार का तौक न पहनता। फिर उन्होंने दोनों हाथ सीने पर रख लिये और सर गोद में झुकाकर बोले"मैं जात का गड़रिया। मेरा पिता मुडासी का ग्वाला। मैं अविद्या का पुत्र। मेरा वंश अब जेहेल (हजरत मुहम्मद साहब के शत्रु चाचा) के वंश से सम्बन्धित और आका की एक नंजर, हजरत का एक इशारा, हुजूर ने चन्तू को मुंशी चन्तराम बना दिया। लोग कहते हैं मुंशीजी। मैं कहता हूं रहमत उल्ला एलैह (भगवान के कृपापात्र) के तुच्छ गुलाम पर कृपा हो...लोग समझते हैं..." दाऊजी कभी हाथ जोड़ते कभी सर झुकाते, कभी उँगलियां चूमकर आँखों को लगाते और बीच-बीच में फारसी के शेर पढ़ते जाते।

दाऊजी ने मेरा जीवन बरबाद कर दिया। मेरा जीना हराम कर दिया।

सारा दिन स्कूल की बकवास मे गुजरता और रात गर्मियों की छोटी-सी रात प्रश्नों के उत्तर में।

कोठे पर उनकी खाट मेरे बिस्तर के साथ लगी है और दाऊजी पूछ रहे हैं" 'बहुत बे-आबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले', इसका अनुवाद करो!"

मैंने आज्ञाकारी होकर कहा"जी, यह लम्बा वाक्य है, सुबह लिखकर बता दूंगा। कोई दूसरा पूछिए।" उन्होंने आकाश की ओर निगाहें उठाकर 'बहुत अच्छा'कहा।

उमीचन्द कालेज चला गया तो उसकी बैठक मुझे मिल गयी और दाऊजी के मन में उसके प्रेम पर भी अधिकार कर लिया। अब दाऊजी मुझे बहुत अच्छे लगने लगे थे। उनकी जो बातें मुझे उस समय बुरी लगती थीं, वह अब भी बुरी लगती हैं बल्कि अब पहले से अधिक ही। शायद इसलिए कि मैं मनोविज्ञान का एक विद्यार्थी हूं और दाऊजी 'मुल्लाई मकतब' (पुराने स्कूल) के पढ़े-पले हुए थे। सबसे बुरी आदत उनकी उठते-बैठते प्रश्न पूछने की थी और दूसरी खेलने-कूदने से मना करने की। वह तो बस यह चाहते थे कि आदमी पढ़ता रहे...पढ़ता रहे और जब उसे टी.बी.का रोग हो जाए और मृत्यु का दिन करीब आये, तो किताबों के ढेर पर जानदे।

बेबे को इन दाऊजी से बिना कारण ही बैर था। दाऊजी उनसे बहुत डरते थे। वह दिन भर मोहल्लेवालियों के कपड़े सिया करतीं और दाऊजी को कोसने दिये जातीं। उनकी इस जुबान-दरांजी (कोसने) पर मुझे बहुत गुस्सा आता था। मगर पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर न हो सकता था। कभी-कभी वह बुरी-बुरी गालियों पर उतर आतीं तो दाऊजी मेरे पास बैठक में आ जाते और कानों पर हाथ रखकर कुर्सी पर बैठ जाते। थोड़ी देर बाद कहतेपीछे बुराई करना बड़ा बुरा है। परन्तु मेरा भगवान मुझे क्षमा करे। तेरी बेबे भटियारिन है।

और वास्तव में बेबे भटियारिन-सी थीं। उनका रंग संख्त काला था और दाँत बहुत संफेद। माथा मेहराबदार और आँखें चुनिया-सी चलतीं तो ऐसी लगती बिल्ली की-सी चाल से जैसे (खुदा मुझे मांफ करे) कुटनी कनसुईयाँ लेती फिरती है, बेचारी बीबी को ऐसी बातें कहतीं कि वह दिनों-दिन रो-रोकर थक जाती।

यूं तो बीबी बेचारी बड़ी अच्छी लगती थी, परन्तु मेरी भी न बनती थी। मैं कोठे पर बैठा सवाल निकाल रहा हूं। दाऊजी नीचे बैठे हैं और बीबी ऊपर बरसाती से ईंधन लेने आयी, तो जरा रुककर मुझे देखा फिर मुंडेर से झांककर बोली"दाऊजी, पढ़ नहीं रहा है, तिनकों की चारपाइयां बना रहा है।"

मैं चिड़चिडे बच्चे की तरह मुंह चिढ़ाकर कहता"तुझे क्या? नहीं पढ़ता तो तू क्यों बड़-बड़ करती है...आयी बड़ी थानेदारनी !" और दाऊजी नीचे से हांक लगाकर कहते ना-ना, गोलू-मोलू, बहिनों से नहीं झगड़ते। और मैं जोर से चिल्लाता"पढ़ रहा हूं जी, झूठ बोलती है। दाऊजी धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आ जाते और कापियों के नीचे आधी छुपी हुई चारपाई देखकर कहते"कुररत बिटिया, तू इसे चिढ़ाया न कर, बड़ी मुश्किल से काबू किया है, अगर एक बार फिर बिगड़ गया, तो मुश्किल से ठीक होगा।"

उन दिनों नित्य मैं 10 बजे सुबह दाऊजी के यहां से चल देता, घर जाकर नाश्ता करता और फिर स्कूल पहुंच जाता। आधी छुट्टी पर मेरा खाना स्कूल भेज दिया जाता। शाम को घर आने पर अपनी लालटेन तेल से भरता और दाऊजी के यहां आ जाता। फिर रात का खाना भी दाऊजी के घर पर ही भिजवा दिया जाता।

जिन दोनों मुंसिफी बन्द होती, दाऊजी स्कूल के मैदान में आकर बैठ जाते और मेरी प्रतीक्षा करते, वहां से घर तक प्रश्नों की बौछार रहती। स्कूल में जो कुछ पढ़ाया गया होता उसे विस्तार पूर्वक पूछते। फिर मुझे मेरे घर छोड़कर स्वयं सैर को चले जाते।

एक दिन अचानक मैं दाऊजी को लेने मुंसिफी पहुंच गया। उस समय कचहरी बन्द हो गयी थी और दाऊजी नानबाई के छप्पर तले एक बेंच पर बैठे गुड़ की चाय पी रहे थे। मैंने धीरे से जाकर कहा चलिए, मैं आपको लेने आया हूं। उन्होंने मुझे देखे बंगैर चाय के बड़े-बड़े घूंट भरे, एक आना जेब से निकालकर नानबाई के हवाले किया और चुपचाप मेरे साथ चल दिये। मैंने शरारत से नाच कर कहा, "घर चलिए, बेबे से कहूंगा कि आप चोरी-चोरी से चाय पीते हैं।"

दाऊजी शर्मिन्दगी छुपाते हुए बोले इसकी चाय बहुत अच्छी होती है और गुड़ की चाय से थकान भी दूर हो जाती है। फिर यह एक आने में गिलास भरके देती है। तुम अपनी बेबे से न कहना, वह झगड़ा शुरू कर देगी। ज्यादती पर उतर आएगी। फिर उन्होंने डरकर मायूस होकर कहाउसकी प्रकृति ही ऐसी है। उस दिन मुझे दाऊ पर बड़ी दया आयी। मेरा मन उनके लिए बहुत कुछ करने को चाहने लगा, परन्तु इस समय मैंने बेबे से न कहने का वादा करके ही उनके लिए कुछ किया।

जब इस किस्से का जिक्र मैंने अम्मा से किया तो वह कभी मेरे हाथ और कभी नौकर के द्वारा दाऊजी के यहां दूध, फल और चीनी इत्यादि भेजने लगीं। मगर इस भेजने से दाऊजी को कभी भी कुछ नसीब न हुआ। हां, बेबे की निगाहों में मेरी कद्र बढ़ गयी और उन्होंने किसी सीमा तक मुझसे रियायती व्यवहार करना शुरू कर दिया।

दाऊजी के जीवन में बेबे वाला पहलू बड़ा ही कमंजोर था। जब वह देखते कि घर का वातावरण सांफ है और बेबे के चेहरे पर कोई बात नहीं है तो वह पुकारकर कहतेसब एक-एक शेर सुनाओ। पहले मुझसे तकांजा होता और मैं छुटते ही कहता

लांजिम था के देखो मेरा रास्ता कोई दिन और,

तनहा गये क्यों अब रहो तनहा कोई दिन और।

बीबी भी मेरी तरह इस शेर से शुरू करती

शुनिदम के शाहपूर दम दरद कशीद

चूँ खुसरो बर इस माश कलम दर कशीद।

(मैंने सुना है शाहपूर साँस भी न ले सका जब खुसरो बादशाह ने इसके नाम पर कलम चलाकर मौत की आज्ञा दी।)

इसपर दाऊजी एक बार फिर आर्डर-आर्डर कहते। बीबी कैंची रखकर कहती

शोरे शुदबाजखुबाबे अदम चश्म कुशुदेम,

दी देम के बाकीस्त शबे फितना गुनुदेम।

(दुनिया के शोर से मैं स्वर्ग के स्वप्न से जागकर दुनिया में आया लेकिन यहां उथल-पुथल देखकर फिर आँखें बन्द कर लीं और मौत की पनाह ली।)

दाऊजी शाबाश तो जरूर कह देते लेकिन साथ ही यह भी कह देते"बेटा, यह शेर तो कई बार सुना चुकी हो।"

फिर वह बेबे की ओर देखकर कहते"कहो भाई, आज तुम्हारी बेबे भी एक शेर सुनाएंगी।" मगर बेबे एक ही रूखा-सा उत्तर देतीं"मुझे नहीं आते शेर कबित्त।" इसपर दाऊजी कहते घोड़ियां ही सुना दे। अपने बेटों के ब्याह की घोड़ियां ही गा दे। इस पर बेबे के होंठ मुस्कराने को करते, परन्तु वह मुसकरा न सकतीं और दाऊजी औरतों की तरह घोड़ियां गाने लगते। इनके बीच कभी उमीचन्द का और कभी मेरा नाम टांक देते। फिर कहते मैं अपने इस गोलूमोलू की शादी पर सुर्ख पगड़ी बांधूंगा। बारात में डाक्टर साहब के साथ चलूंगा और निकाहनामा शहादत के दस्तंखत करूंगा। मैं परंपराओं के अनुसार शरमा कर निगाहें नीची कर लेता तो वह कहतेपता नहीं इस देश के किस शहर में मेरी छोटी-सी बहू पांचवीं या छठी कक्षा में पढ़ रही होगी। मैं तो उसको फारसी पढ़ाऊंगा। पहले उसको सुलेख की शिक्षा दूंगा। फिर घसीट लेख सिखाऊंगा। औरतों को घसीट लिखना नहीं आता, मैं बहू को सिखा दूंगा...

मेरी और उमीचन्द की तो बात ही थी परन्तु 12 जनवरी को बीबी की बारात सचमुच आ गयी। जीजा रामप्रताप के विषय में दाऊजी बहुत बता चुके थे कि वह बहुत अच्छा लड़का है और सबसे ज्यादा खुशी दाऊजी को इस बात की थी कि इनके समधी फारसी के उस्ताद थे और कबीरपन्थी धर्म से सम्बन्ध रखते थे।

बारह तारींख की शाम को जब बीबी विदा होने लगी, तो घर-भर में शोर मच गया। बेबे फूट-फूटकर रो रही हैं, उमीचन्द आंसू बहा रहे हैं और मोहल्ले की औरतें फुस-फुस कर रही हैं। मैं दीवार के साथ खड़ा हूं। दाऊजी मेरे कन्धे पर हाथ रखे खड़े हैं और बार-बार कह रहे हैं"आज जमीन कुछ मेरे पाँव नहीं पकड़ती, मैं तो सदा स्थिर नहीं रह सकता।"

बारात वाले इक्का और तांगों पर सवार थे। बीबी रथ में जा रही थी। उसके पीछे उमीचन्द और मैं। दाऊजी हमारे बीच पैदल चल रहे थे। अगर बीबी की चीख जोर से निकल जाती, तो दाऊजी आगे बढ़कर रथ का पर्दा उठाकर कहते" लाहोल पढ़ो बिटिया। और स्वयं आँखों पर रखा उनकी पगड़ी का पल्ला भीग गया था..."

रानो हमारे मोहल्ले का बड़ा ही गन्दा व्यक्ति था। बुराई करना और मन में मुटाव रखना उसका स्वभाव था। उसका एक बाड़ा था उसमें 20-25 बकरियां और दो गायें थीं, जिनकी दूध सुबह-शाम रानो गली के बगली मैदान में बेचा करता था। सारे मुहल्ले वाले उसी से दूध लेते थे। उसकी शरारतों से डरते भी थे। हमारे घर से आगे गुंजरते हुए वह शौकिया लाठी जमीन पर बजाकर दाऊजी को 'पंडित जयराम जी' कहकर सलाम करता। दाऊजी ने उसे कई बार समझाया कि वह पंडित नहीं हैं मामूली आदमी हैं क्योंकि उनके विचार से पंडित पढ़े-लिखे और विद्वान को कहते थे। परन्तु रानो नहीं मानता था। वह अपना मुंह चबाकर कहताले भाई, जिसके सर बोदी होती है या चुटिया होती है वह पंडित होता है। वह सबसे ज्यादा मंजांक दाऊजी की चोटी की उड़ाता।

सच में दाऊजी के सर पर चोटी अच्छी नहीं लगती थी।

मैंने हंजरत मौलाना के सामने भी पगड़ी उतारने का साहस नहीं किया था परन्तु वह जानते थे कि यह पगड़ी मुझे अपने जीवन की तरह प्रिय है क्योंकि यह मेरी मां की निशानी थी, वह कहते, अपनी गोद में रखकर दही से धोती थी। मुझे याद है, जब मैं दयालचन्द हाई स्कूल से एक साल की छुट्टियों में गाँव आया, तो हुजूर ने पूछा"शहर जाकर चोटी तो नहीं कटवा दी?" तो मैंने ना में उत्तर दिया। इसपर वह बहुत खुश हुए और फरमाया"तुम जैसा बेटा बहुत कम मांओ को मिलता है और हम-सा भाग्यशाली उस्ताद भी कम होगा जिसे तुम जैसा विद्यार्थी पढ़ाने का सुअवसर प्राप्त हुआ हो।"

मैंने उनके पांव छूते हुए कहा"हजूर, आप मुझे लज्जित करते हैं। यह सब आपके कदमों का फल है।"

इसपर कहने लगे"चन्तराम, हमारे पांव न छुआ करो, भला ऐसे छूने से क्या लाभ, जिनका हमें अनुभव न हो।"

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैंने कहा"अगर कोई मुझे बता दे तो समुद्र फाड़कर आपके लिए दवाई निकाल लाऊं। अपने जीवन की गर्मी हुजूर की टांगों के लिए न्योछावर कर दूं। परन्तु मेरा बस नहीं चलता..."

वह खामोश हो गये और निगाहें ऊपर उठाकर बोले"खुदा की यह मर्जी है तो ऐसे ही सही। तुम सलामत रहो, तुम्हारे कन्धों पर मैंने सारा गांव देख लिया है।"

दाऊजी गुंजरी बातों की गहराई में कहने लगे"मैं सुबह-सबेरे हवेली की डयोढ़ी पर जाकर आवांज देतागुलाम आ गया। औरतें एक ओर हो जातीं तो हुजूर मुझे आवांज देते और मैं अपने भाग्य की सराहना करता हाथ जोड़े-जोड़े उनकी ओर बढ़ता। पांव छूता और आज्ञा की प्रतीक्षा करता। वह दुआ देते, मेरे माता-पिता के विषय में पूछते। गांव का हाल पूछते और फिर कहतेलो भाई, चन्तराम, गुनाहों की गठरी को उठा लो। मैं फूल की पंखड़ी की तरह उन्हें उठाता और कमर पर लादकर हवेली के बाहर आता। कभी फरमाते कि हमें बाग का चक्कर दो, कभी हुक्म होतासीधे रहेट के पास ले चलो, कभी-कभी बड़ी विनय से कहते, चन्तराम थक न जाओ तो हमें मस्जिद तक ले जाओ। मैंने कई बार कहा, हुजूर नित्य मस्जिद ले जाए करूँगा। मगर नहीं माने, यही कहते रहे कि कभी जी चाहता है, और जब जी चाहता है तो तुमसे कह देता हूं।

जिस दिन मैंने सिकन्दरनामा जुबानी याद करके सुनाया, इतना खुश हुए जैसे सारी दुनिया के सुख मिल गये हों। सारी दुनिया की दुआओं से मुझे माला-माल किया। प्यार भरा हाथ फेरा और जेब से एक रुपया निकाल मुझे इनाम दिया। मैंने इसे हिजर असवत समझकर बोसा दिया। आँखों से लगाया और सिकन्दर का अंफसर समझकर पगड़ी में रख लिया। वह दोनों हाथ उठाकर दुआएं दे रहे थे और फरमा रहे थेजो काम हमसे न हो सका, तूने कर दिया। तू नेक है, खुदा ने तुझे यह आदत नसीब की, चन्तराम, तेरा बकरियां चराने का पेशा है, तू...तू शाहे बया का चैरोह (मुहम्मद साहब के रास्ते पर चलनेवाला) है। इस कारण भगवान, जो महान विभूति है, वही तुझे बरकत देगा।

मेरी परीक्षा करीब थी और दाऊजी कठोर होते जा रहे थे। उन्होंने मेरे हर खाली समय पर कोई-न-कोई काम फैला दिया था। एक निबन्ध से छूटता था, दूसरे की पुस्तकें निकालकर सर पर सवार हो जाते थे। पानी पीने उठता, तो छाया की तरह पीछे-पीछे जाते और कुछ नहीं तो तवारींख के सन् ही पूछते। शाम को स्कूल पहुंचने को स्वभाव बना लिया था। एक दिन स्कूल के बड़े दरवांजे से निकलने की बजाय बोर्डिंग हाउस की राह निकल गया, तो उन्होंने क्लास के दरवांजे पर जाकर बैठना शुरू कर दिया। मैं

चिड़चिड़ा और जिद्दी होने के अलावा बदंजुबान भी हो गया था। 'दाऊजी के बच्चे' मेरा तकिया कलाम बन गया था। और कभी-कभी तो उनके प्रश्नों की कठोरता बढ़ जाती, तो मैं उन्हें कुत्ता तक कहने में नहीं चूकता था। नारांज हो जाते तो बस इसी तरह कहतेदेख ले, तू कैसी बातें कर रहा है। तेरी बीबी ब्याह कर लाऊंगा, तो पहले उसे यही बताऊंगा कि जाने पिदर, यह तेरे बुड्ढे को कुत्ता कहता था

फरवरी के दूसरे हफ्ते की बात है। परीक्षा में केवल डेढ़ महीना रह गया था और मुझ पर आनेवाले खतरनाक समय का डर भूत बनकर सवार हो गया था। मैंने स्वयं अपनी पढ़ाई पहले से तेज कर दी थी और बहुत गम्भीर हो गया था, परन्तु रेखागणित के फार्मूले मेरी समझ में नहीं आते थे। दाऊजी की कोशिश से भी कुछ बात न बनी। अन्त में उन्होंने कहा"कुल 52 साध्य हैं, याद कर, इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं है।" मैं उनको रटने में लग गया परन्तु जो साध्य याद करता, सुबह भूल जाता। मैं थककर साहस छोड़-सा बैठा।

दाऊजी ने मेरा सर चूमकर कहा"ले भाई तम्बेरे, मैं तो यूं न समझता था, तू तो बहुत ही कम साहस का आदमी निकला।" फिर उन्होंने मुझे अपने साथ कम्बल में लपेट लिया और बैठक में ले गये। बिस्तर में बैठाकर उन्होंने मेरे चारों ओर रजाई लपेटी और स्वयं पांव कुर्सी पर करके बैठ गये।

उन्होंने कहा"रेखागणित चीज ही ऐसी है। तू इसके हाथों यूं परेशान है। मैं और तरह से तंग हुआ था। हजरत मौलाना के पास बीजगणित और रेखागणित की जितनी अधिक पुस्तकें थीं, उन्हें मैं अच्छी तरह पढ़कर अपनी कापियों पर उतार चुका था। कोई बात ऐसी न थी, जिसमें उलझन होती। मैंने यह जाना कि मैं हिसाब में विशेषज्ञ हो गया हूं। परन्तु एक रात मैं अपनी खाट पर पड़ा समानान्तर रेखाओं के फार्मूले पर गौर कर रहा था कि बात उलझ गयी। मैंने दीया जलाकर शक्ल बनायी और उसपर गौर करने लगा। बीजगणित की रूह से माना हुआ उत्तर ठीक आता था। परन्तु गणित से ठीक परिणाम नहीं निकलता था। मैं सारी रात कांगंज स्याह करता रहा, परन्तु तेरी तरह से सोया नहीं। सुबह-सुबह मैं हजरत की खिदमत में उपस्थित हुआ, तो उन्होंने अपने हाथ से कांगंज पर शक्ल खींचकर समझाना शुरू किया, लेकिन जहाँ मुझे उलझन हुई थी, वहाँ हजरत मौलाना की बुद्धिमत्ता को भी कोंफ्त हुई।" कहने लगे चन्तराम, अब

हम तुम्हें नहीं पढ़ा सकते। जब उस्ताद और विद्यार्थी का ज्ञान समान हो जाए, तो विद्यार्थी को किसी दूसरे विशेषज्ञ की ओर जाना चाहिए।

मैंने साहस से कह दिया"हुजूर, कोई दूसरा अगर यह वाक्य कहता तो उसे मैं नास्तिक के बराबर समझता परन्तु आपका हर शब्द और हर पाई भगवान की आज्ञा से कम नहीं होता। इस कारण चुप हूं। भला आका-ए-गजनबी के सामने अयाज (एक गुलाम) की क्या मजाल! परन्तु हुजूर मुझे दुख बहुत हुआ।"

वह कहने लगे"भावुक आदमी, बात तो सुन ली होती।"

मैंने सर झुकाकर कहा"कहिए..."

उन्होंने कहा"दिल्ली में वैद्य नासिक अली सीसतानी गणित के विशषज्ञ हैं। अगर तुमको इसका ऐसा ही शौक है तो उनके पास चले जाओ और अभ्यास करो। हम उनके नाम पत्र लिख देंगे।"

मैंने इच्छा प्रकट की तो कहा"अपनी माता से पूछ लेना, अगर वह राजी हों तो मेरे पास आना।"

माता से पूछना और इजाजत लेना तथा अपनी इच्छानुसार उत्तर पाना कठिन काम था। थोड़े दिन बहुत बेचैन गुजरे। मैं दिन-रात इस कठिनाई को हल करने का प्रयत्न करता परन्तु ठीक उत्तर न मिल पाया। इस न हल होनेवाले किस्से से तबीयत में अधिक बिखराव उत्पन्न हुआ। मैं दिल्ली जाना चाहता था, लेकिन हुजूर से मां की इजाजत के बिना इजांजत नहीं मिल सकती थी। मां इस बुढ़ापे में कैसे रांजी हो सकती थी!

"एक रात जब सारा गांव सो रहा था और मैं तेरी तरह परेशान था तो मैंने अपनी मां की पिटारी से उसकी कुल पूंजी से दो रुपये चुरा लिए और गांव छोड़कर निकल गया। खुदा मुझे क्षमा करे और अपने दोनों बुंजुर्गों की आत्मा को मुझ पर रांजी रखे। वास्तव में मैंने बड़ा पाप किया है और प्रलय तक मेरा सिर इन दोनों मेहरबानों के सामने शर्म से झुका रहेगा। गांव से निकलकर मैं हुजूर की हवेली के पीछे उनके मसनद के पास

पहुंचा जहां बैठकर आप पढ़ाते थे। घुटनों के बल मैंने जमीन को चूमा और मन में कहाअभागा हूं, जो बिना आज्ञा के जा रहा हूं लेकिन आपकी दुआओं से सारा जीवन भरपूर रहेगा। मेरा अपराध क्षमा नहीं किया तो आपके कदमों में जान दे दूंगा। इतना कहकर और कन्धे पर लाठी रखकर मैं वहां से चल दिया...सुन रहा है"दाऊजी ने मेरी ओर गौर से देखकर पूछा।

"हां", रजाई के बीच सेई बने मैंने धीरे से कहा। दाऊजी ने फिर कहना शुरू किया"भगवान ने मेरी कमाल की सहायता की। उन दिनों जाखुल, जनैत, सिरसा, हिसारवाली रेल की पटरी बन रही थी। यही सीधा रास्ता दिल्ली को जाता था और यहीं मजदूरी मिलती थी। एक दिन मैं मजदूरी करता और दो दिन चलता। इस प्रकार बे-देखी सहायता के सहारे सोलह दिन में दिल्ली पहुंच गया।

"मंजिल तो हाथ लग गयी लेकिन वह वस्तु न मिल सकी। जिससे पूछता, हकीम नासिक अली सीसतानी का घर कहां है, नहीं में उत्तर मिलता। दो दिन खोज जारी रही, परन्तु पता न पा सका। भाग्य तगड़ा, और स्वास्थ्य अच्छा था। अंग्रेजों के लिए कोठियां बन रही थीं, वहां काम पर जाने लगा। शाम को खाली होकर वैद्यजी का पता मालूम करता और रात के समय एक धर्मशाला में खेस फेंककर गहरी नींद सो जाता।

"एक कहावत प्रसिद्ध है, जो ढूंढ़ता है सो पाता है। अन्त में एक दिन मुझे हकीम साहब की जगह मालूम हो गयी। वह पत्थर-फोड़ों के मोहल्ले की एक अंधेरी गली में रहते थे। शाम के समय मैं उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। एक छोटी-सी कोठरी में बैठे थे और कुछ मित्रों से ऊँची-ऊँची बातचीत हो रही थी। मैं जूते उतारकर चौखट के अन्दर खड़ा हो गया।

"एक साहब ने पूछा ,कौन है?

"मैंने सलाम करके पूछा -हकीम साहब से मिलना है।

"हकीम साहब मित्रों कि मंडली में सर झुकाए बैठे थे और उनकी पीठ मेरी तरफ थी। इसी तरह बैठे-बैठे बोलेनाम?

"मैंने हाथ जोड़कर कहा ,पंजाब से आया हूं और...

"मैं बात पूरी भी न करने पाया था कि जोर से बोले ,चन्तराम हो ! मैं कुछ उत्तर न दे सका। फरमाने लगे ,मुझे इस्माइल का पत्र मिला है। लिखता है, शायद चन्तराम तुम्हारे पास आये। हमें बताये बगैर घर से भाग गया है, उसकी सहायता करना।" मैं इसी प्रकार चुप रहा, तो गम्भीर आवांज में बोलेमियां अन्दर आ जाओ। क्या चुप का रोजा रखा है? मैं जरा आगे बढ़ा तो भी मेरी तरफ न देखा, वैसे ही नई दुल्हन की तरह बैठे रहे।

"फिर थोड़ी हुक्म देनेवाली मुद्रा में कहा ,बेटा, बैठ जाओ।

"मैं वही बैठ गया तो अपने मित्रों से कहा भाई जरा ठहरो, मुझे इससे दो-दो हाथ कर लेने दो। फिर हुक्म हुआ, बताओ हिनसे का या गिनती का कौन-सा मसला या प्रयोग तुम्हें समझ में नहीं आया?

"मैंने डरते-डरते बताया, तो उन्होंने उसी तरह कन्धों की तरफ अपने हाथ बढ़ाये और धीरे-धीरे यूं अपनी ओर खींच लिया कि उनकी कमर नंगी हो गयी, फिर बोलेबनाओ अपनी अंगुली से मेरी कमर पर समानान्तर रेखा। मुझ पर खामोशी छायी हुई थीन आगे बढ़ने का साहस, न पीछे हटने की शक्ति। एक क्षण के बाद बोले मियां जल्दी करो, अन्धा हूं। कांगंज-कलम कुछ नहीं समझता। मैं डरते-डरते आगे बढ़ और उनकी चौड़ी-चकली कमर पर कांपती हुई उंगली से समानान्तर रेखा बनाने लगा। जब वह नामालूम-सी शक्ल बन गयी, तो बोलेकि अब नुक्ता (निशान) 'स' है क्या? फिर स्वयं ही बोले धीरे-धीरे आदी हो जाओगे। बाये कन्धे से छह अंगुल नीचे नुक्ता या निशान 'सा' है वहां है वहां से लकीर खीचो।

"हे ईश्वर, क्या आवांज थी, क्या विधि थी और कितना तेज था! वह बोल रहे थे और मैं मौन बैठा था। यूं लग रहा था कि अभी इनके वाक्य के साथ नूर की लकीर समानान्तर रेखा बनकर उनकी कमर पर उभर आएगी।...फिर दाऊजी दिल्ली के दिनों में डूब गये। उनकी आँखें खाली थीं। मेरी तरफ देख रहे थे।

मैंने बेचैन होकर पूछा"फिर क्या हुआ दाऊजी?"

उन्होंने कुर्सी से उठते हुए कहा"रात बहुत गुंजर चुकी है, अब तू सो जा,फिर बताऊँगा।" मैं जिद्दी बच्चे की तरह उनके पीछे पड़ गया तो उन्होंने कहा"पहले वादा कर आगे निराश नहीं होगा और इन छोटी-छोटी साध्यों को बताशे समझेगा।"

मैंने उत्तर दिया"हलवा समझूंगा, आप चिन्ता न करें।"

उन्होंने खड़े-खड़े कम्बल लपेटते हुए कहा"बस, सारांश यह है कि मैं एक वर्ष हकीम साहब की जी-हुजूरी में रहा और उस विद्या के समुद्र से कुछ बूंदें प्राप्त करके मैंने अपनी अन्धी आंखों को धोया। वापस आने पर अपने आका की सेवा में पहुंचा और उनके कदमों पर सर रख दिया। फरमाने लगे चन्तराम अगर हममें शक्ति हो तो इन पांवों को खींच लें। मैं रो दिया, तो प्रेमपूर्वक हाथ फेरते हुए कहने लगे हम तुमसे नारांज नहीं हैं। परन्तु एक साल की दूरी बहुत तगड़ी है, आगे से जाना, तो हमें भी साथ लेते जाना।..." यह कहते हुए दाऊजी की आंखों में आंसू आ गये और वह मुझे इसी तरह गुमसुम छोड़कर बैठक से बाहर निकल गये।

हमारे कस्बे में हाई स्कूल जरूर था लेकिन मैट्रिक की परीक्षा का केन्द्र न था। परीक्षा देने के लिए हमें जिले जाना होता था। इस कारण वह सुबह आ गयी, जब हमारी क्लास परीक्षा देने के लिए जा रही थी, और गाड़ी के चारों ओर माता-पिता जैसे लोगों की भीड़ जमा थी। और इस झुंड से दाऊजी कैसे पीछे हो सकते थे। सब लड़कों के घर वाले उन्हें अच्छी दुआएं, अनेक शुभकामनाएं दे रहे थे और दाऊजी सारे साल की पढ़ाई का भार जमा करके जल्दी-जल्दी प्रश्न पूछ रहे थे और मेरे साथ-साथ स्वयं उतार-चढ़ाव पर पहुंच जाते। वहां से पलटते तो उसके बाद एक और बादशाह आया जो अपनी वेश-भूषा से हिन्दू लगता था। वह नशे में चूर था। और...जहांगीर, मैंने जवाब दिया और वह औरत नूरजहां हम दोनों एक साथ बोले, गुण, उपमा और क्रिया में अन्तर? मैंने दोनों की तारीफें वर्णन कीं। बोले उदाहरण? मैंने उदाहरण दिये। सब लड़के लारी में बैठ गये और मैं उनसे जान छुड़ाकर जल्दी से दाखिल हआ तो घूमकर खिड़की के पास आ गये और पूछने लगे'ब्रेक्र इन' और 'ब्रेक इन टु' को वाक्यों में प्रयोग करो। उनका प्रयोग भी हो गया और मोटर स्टार्ट होकर चली तो उसके साथ उनके कदम उठे।

पहले दिन इम्तिहान का पर्चा हुआ बहुत अच्छा। दूसरे दिन भूगोल को उससे बढ़कर, तीसरे दिन रविवार था और उसके बाद हिसाब की बारी आयी थी। रविवार की सुबह दाऊजी का एक लम्बा पत्र मिला, जिसमें बीजगणित के फार्मूले और हिसाब के कायदे के अतिरिक्त कोई और बात न थी। हिसाब का पर्चा करने के बाद बरामदे में मैंने लड़कों से जवाब मिलाये तो 100 में 80 पर्चा ठीक था, हां, मैं खुशी से पागल हो उठा। जमीन पर पैर नहीं पड़ता था और मेरे मुंह से खुशी के नारे निकल रहे थे।

ज्योंही मैंने बरामदे से पांव नीचे रखा, दाऊजी खेस कन्धे पर डाले एक लड़के का पर्चा देख रहे थे। मैं चीख मारकर लिपट गया और 80 नम्बर के नारे लगाने शुरू कर दिये।

उन्होंने पर्चा मेरे हाथ से छीनकर कड़वाहट से पूछा"कौन सवाल गलत होगया?"

मैंने झुककर कहा"चारदीवारी वाला।"

झुँझलाकर बोले"तूने खिड़कियां और दरवांजे घटाये नहीं होंगे!"

मैंने उनकी कमर में हाथ डालकर पेड़ की तरह झूलते हुए कहा"हां जी, जी हां...गोली मारो खिड़कियों को..."

दाऊजी डूबी आवांज में बोले"तूने मुझे बरबाद कर दिया तम्बूरे। साल के 365 दिन मैं पुकार-पुकारकर कहता रहां जमीनों का प्रश्न आंखें खोलकर करना, मगर तूने मेरी बात न मानी, तूने मेरी बात न मानकर 20 नम्बर खराब किये, पूरे 20 नम्बर।" और दाऊजी का चेहरा देखकर मेरी 80 फीसदी सफलता 20 फीसदी असफलता में यूं दब गयी, जैसे उसका वजूद ही न था।

रास्ते भर वह अपने आप से कहते रहेअगर परीक्षक अच्छे दिल का हुआ, तो वह नम्बर जरूर देगा। तेरा बाकी हल तो ठीक है। इस पर्चे के बाद दाऊजी परीक्षा के अन्तिम दिन तक मेरे साथ रहे। वह रात के 12 बजे तक मुझे उस सराय में पढ़ाते, जहां हमारी क्लास ठहरी हुई थी और उसके बाद, बकौल उनके, अपने मित्र के यहां चले जाते। सुबह आठ बजे आ जाते और फिर इम्तिहान वाले कमरे तक मेरे साथ चलते।

परीक्षा समाप्त होते ही दाऊजी को ऐसा छोड़ दिया, जैसे मेरा परिचय ही न हो। सारा दिन दोस्तों के साथ घूमता और शाम को उपन्यास पढ़ता। इस बीच अगर समय मिलता, तो दाऊजी को सलाम करने चला जाता। वह इस बात पर दृढ़ थे कि हर रोज कुछ समय उनके साथ गुजारा करूं ताकि वह मुझे कालेज की पढ़ाई के लिए भी तैयार कर दें, लेकिन मैं उनके फन्दे में आने वाला नहीं था। मुझे कालेज में सौ बार फेल होना स्वीकार था, लेकिन दाऊजी से पढ़ना स्वीकार नहीं था। पढ़ने को छोड़िए, उनसे बातें करना भी कठिन था। मैंने कुछ उत्तर दिया, फरमायाइस का विश्लेषण करो। हवलदार की गाय अन्दर घुस आयी, मैं उसे लकड़ी से बाहर निकाल रहा हूं और दाऊजी पूछ रहे हैं'काऊ' संज्ञा है या क्रिया? अब हर अक्ल का अन्धा और पांचवी कक्षा का पढ़ा जानता है कि गाय संज्ञा है मगर दाऊजी फरमा रहे हैं संज्ञा भी है और क्रिया भी। 'टु काऊ' का अर्थ है डराना-धमकाना।

जिस दिन रिजल्ट निकला, मैं और अब्बाजी लड्डुओं की एक छोटी-सी टोकरी लेकर उनके घर गये। दाऊजी सर झुका के अपने हसीर पर बैठे थे। अब्बाजी को देखकर उठ खड़े हुए, अन्दर से कुर्सी ले आये और अपने बोरिये के पास डालकर बोले"डाक्टर साहब, आपके सामने लज्जित हूं परन्तु इसे भी भाग्य के लिखे की खूबी समझिए, मेरा विचार था कि इसकी फर्स्ट डिवीजन आ जाएगी लेकिन न आ सकी। बुनियादी कमजोरी थी।"

"एक ही तो नम्बर कम है", मैंने चहककर बात काटी और वह मेरी तरफ देख कर बोले"तू नहीं जातता इस एक नम्बर से मेरा दिल दो टुकडे हो गया। खैर, खुदा की मर्जी", फिर अब्बाजी और वह बातें करने लगे और मैं बेबे के साथ बातों में लग गया।

अब वह मुझसे सवाल इत्यादि न पूछते थे। कोट-पतलून और टाई देखकर बड़े प्रसन्न होते। चारपाई पर बैठने न देते थे। कहा करते अगर मुझे उठने नहीं देता तो स्वयं कुर्सी ले ले और मैं कुर्सी खींचकर उनके पास डट जाता। कालेज-लाइब्रेरी से जो किताबें साथ लाता उन्हें देखने की इच्छा जरूर करते और मेरे वादों के बावजूद अगले दिन स्वयं हमारे घर किताबें देख जाते।

उमीचन्द कुछ कारणवश कालिज छोड़कर बैंक में नौकर हो गया था और दिल्ली चला गया था। बेबे की सिलाई का काम बराबर जारी था। दाऊजी भी मुंसिफी जाते पर कुछ न लाते थे। बीबी के पत्र आते थे और वह अपने घर में बहुत खुश थी। कालिज की एक साल की जिन्दगी मुझे दाऊजी से बहुत दूर खींच लायी। वह लड़कियां, जो दो साल पहले मेरे साथ आपू-टापू खेला करती थीं, चाचा की लड़कियां बन गयी थीं।

घर के मामूली आने-जाने के सामने ऐबटाबाद की लम्बी यात्रा शान्त और सुहानी थी। इसी समय मैंने पहली बार एक खूबसूरत गुलाबी पैड और ऐसे ही लिंफांफा का एक पैकेट खरीदा, और उस पर न अब्बाजी को पत्र लिखे जो सकते थे और न ही दाऊजी को। दशहरे की छुट्टियों में दाऊजी से भेंट न हुई, न बड़े दिन की छुट्टियों में। ऐसे ही ईस्टर गुंजर गया और यूं ही दिन गुजर गये।

देश को आंजादी मिली। कुछ झगड़े हुए, फिर लड़ाइयां शुरू हो गयीं। हर तरफ फसाद की खबरें आने लगीं और अम्मा ने हम सबको घर बुला लिया। हमारे लिए यह जगह बड़ी सुरक्षित थी। बनिये, साहूकार भाग रहे थे, लेकिन दूसरे लोग चुप थे। थोड़े ही दिनों बाद महाजरिन (शरणार्थियों) के आने का सिलसिला आरम्भ हो गया और वही लोग यह खबर लाये कि आंजादी मिल गयी। एक दिन हमारे कस्बों में भी कुछ घरों को आग लगी और दो बातों पर खूब लड़ाई हुई। थाने वालों और मिलिटरी के सिपाहियों ने कर्फ्यू लगा दिया और जब कर्यू खत्म हुआ तो सब हिन्दू-सिख कस्बा छोड़कर चल दिये।

दोपहर को अम्मा ने दाऊजी की खबर लेने को भेजा, तो उस जानी-पहचानी गली में अजीब नई-नई शक्लें नंजर आयीं। हमारे घर अर्थात् दाऊजी की डयोढ़ी में एक बैल बंधा था और उसके पीछे टाट का पर्दा लटक रहा था। मैंने घर आकर बतायादाऊजी और बेबे अपना घर छोड़कर चले गये। यह कहते हुए मेरा गला रुंध गया। उस दिन ऐसा लगा, जैसे दाऊजी सदा के लिए चले गये हैं और अब लौटकर नहीं आयेंगे।

कोई तीसरे दिन सूर्य के डूबने के बाद मस्जिद में नए शरणार्थियों के नाम नोट करके और कम्बल भिजवाने का वादा करके उस गली से गुजरा, तो खुले मैदान में सौ-दो सौ व्यक्तियों की भीड़ देखी। शरणार्थी लड़के लाठियां पकडे नारे लगा रहे थे और गालियां

दे रहे थे। मैंने देखने वालों को हटाकर बीच में घुसने का प्रयत्न किया, किन्तु खूंखार आंखें देखकर डर गया।

एक लड़का किसी बूढे से कह रहा था"साथ के गाँव में गया हुआ था, जब लौटा तो अपने घर में घुसता चला गया।"

"कौन से घर में?" बूढ़े ने पूछा।

"रोहत के शरणार्थियों के घर में," लड़के ने कहा। फिर बूढ़े ने पूछा। फिर उन्होंने पकड़ लिया, देखा, तो हिन्दू निकला। इतने में भीड़ से किसी ने चिल्ला कर कहा, ओ रानू, जल्दी आ, जल्दी आ, तेरा प्यार पंडित। रानू बकरियों का झुंड बाड़े की ओर लिये जा रहा था। उन्हें रोककर एक लाठी वाले लड़के को उनके आगे खड़ा करके वह भीड़ में घुस गया। मेरे दिल को एक धक्का-सा लगा, जैसे उन्होंने दाऊजी को पकड़ लिया है।

मैंने बिना देखे करीब के लोगों से कहायह बड़ा अच्छा आदमी है, बड़ा नेक आदमी है...इसे कुछ मत कहो...यह तो...यह तो...

खून में नहायी चन्द आंखों ने मेरी ओर देखा और एक नौजवान गंड़ासी तोल कर बोलादाऊ, तुझे भी...आ गया बड़ा हिमायती बन कर...तेरे साथ कुछ नहीं...और लोगों ने गालियां बककर कहाजुलाहा होगा शायद।

मैं दौड़कर भीड़ में दूसरी ओर घुस गया। रानू की लीडरी में उसके दोस्त दाऊजी को घेरे खड़े थे। और रानू दाऊजी की ठोढ़ी पकड़कर पूछ रहा थाअब बोल बेटा, अब बोल, और दाऊजी चुप खड़े थे। एक लड़के ने उनकी पगड़ी उतार कर कहा काटो चोटी, काटो। रानू ने कटिया काटने वाली दरांती से दाऊजी की चोटी काट दी। वही लड़का फिर बोला, बुला दें, और रानू ने कहा, जाने दो, बुड्ढा है, फिर बोला,मेरे साथ बकरियां चराया करेगा, और उसने दाऊजी की ठोढ़ी ऊपर उठाते हुए कहाकलमा पढ़ पंडित। और दाऊजी धीरे से बोले कौन-सा? रानू ने उनके नंगे सर पर ऐसा थप्पड़ मारा कि वह गिरते-गिरते बचे और बोलासाले कलमा भी कोई पाँच-सात हैं!

जब वह कलमा पढ़ चुके तो रानू ने अपनी लाठी उनके हाथ में थमा दी और कहाचल बे, बकरियां तेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी। और नंगे सर दाऊजी बकरियों के पीछे यूं चले, जैसे लम्बे-लम्बे बालों वाला जिन्न चल रहा हो।